**Hindi Kahani Sangrah :** An anthology of Modern Hindi Short Stories, edited and compiled by Bhisham Sahni. Sahitya Akademi, New Delhi (1994) Rs. 90.

© साहित्य अकादेमी

**प्रथम संस्करण : 1988**
**द्वितीय संस्करण : 1991**
**पुनः मुद्रण : 1994**

**साहित्य अकादेमी**
**प्रधान कार्यालय**
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोजशाह मार्ग, **नयी दिल्ली** 110 001
विक्रय विभाग : 'स्वाति' मंदिर मार्ग, **नयी दिल्ली** 110 001

**क्षेत्रीय कार्यालय**
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23ए/44 एक्स.,
डायमंड हार्बर रोड, **कलकत्ता** 700 053
304 & 305 अन्ना सालई, तेनामपेट, **मद्रास** 600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग,
दादर, **बम्बई** 400 014
ए.डी.ए. रंगमंदिर, 109, जे.सी. मार्ग, **बंगलौर** 560 002

**मूल्य : नबै रुपये**

ISBN 81-7201-657-3

**मुद्रक :**
**कम्प्यूडाटा सर्विसिज़, जंगपुरा, नई दिल्ली-110014**

# हिन्दी कहानी संग्रह

सम्पादक
**भीष्म साहनी**

**साहित्य अकादेमी**

# 2

# मलबे का मालिक

## मोहन राकेश

पूरे साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आये थे। हाकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज़्यादा चाव उन घरों और बाज़ारों को फिर से देखने का था, जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराये हो गये थे। हर सड़क पर मुसलमानों की कोई-न-कोई टोली घूमती नज़र आ जाती थी। उनकी आँखें इस आग्रह के साथ वहाँ की हर चीज़ को देख रही थीं, जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक अच्छा-ख़ासा आकर्षण-केन्द्र हो।

तंग बाज़ारों में से गुज़रते हुए वे एक-दूसरे को पुरानी चीज़ों की याद दिला रहे थे···देख—फतहदीना, मिसरी बाज़ार में अब मिसरी की दूकानें पहले से कितनी कम रह गयी हैं!···उस नुक्कड़ पर सुक्खी भठियारिन की भट्टी थी, जहाँ अब यह पानवाला बैठा है।···यह नमकमण्डी देख लो, खान साहब! यहाँ की एक-एक लालाइन वह नमकीन होती है कि बस···

बहुत दिनों के बाद बाज़ारों में तुर्रेदार और लाल तुरकी टोपियाँ नज़र आ रही थीं। लाहौर से आये हुए मुसलमानों में काफ़ी संख्या ऐसे लोगों की थी, जिन्हें विभाजन के समय मजबूर होकर अमृतसर छोड़कर जाना पड़ा था। साढ़े सात साल में आये अनिवार्य परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आँखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफ़सोस घिर आता—वल्लाह। कटरा जयमल सिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया? क्या इस तरफ़ के सब के सब मकान जल गये?···यहाँ हकीम आसिफ़ अली की दुकान थी न? अब यहाँ एक मोची ने कब्ज़ा कर रखा है।

और कहीं-कहीं ऐसे भी वाक्य सुनाई दे जाते—वली, यह मस्जिद ज्यों-की-त्यों खड़ी है? इन लोगों ने इसका गुरुद्वारा नहीं बना दिया?

जिस रास्ते से भी पाकिस्तानियों की टोली गुज़रती, शहर के लोग उत्सुकता-पूर्वक उसकी ओर देखते रहते। कुछ लोग अब भी मुसलमानों को आते देखकर आशंकित-से रास्ते से हट जाते, जबकि दूसरे आगे बढ़कर उनसे बगलगीर होने लगते। ज़्यादातर वे आगन्तुकों से ऐसे-ऐसे सवाल पूछते कि आजकल लाहौर का क्या हाल है? अनारकली में अब पहले जितनी रौनक़ होती है या नहीं! सुना है,



शाहालमीगेट का बाज़ार पूरा नया बना है? कृष्णनगर में तो ख़ास तबदीली नहीं आयी? वहाँ का रिश्वतपुरा क्या वाक़ई रिश्वत के पैसे से बना है? कहते हैं, पाकिस्तान में अब बुर्का बिल्कुल उड़ गया है, यह ठीक है?···इन सवालों में इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता था, लाहौर एक शहर नहीं, हज़ारों लोगों का सगा-सम्बन्धी है, जिसके हालात जानने के लिए वे उत्सुक हैं। लाहौर से आये हुए लोग उस दिन शहर-भर के मेहमान थे, जिनसे मिलकर और बातें करके लोगों को ख़ामख़ाह ख़ुशी का अनुभव होता था।

बाज़ार बांसां अमृतसर का एक उपेक्षित-सा बाज़ार है, जो विभाजन के पहले ग़रीब मुसलमानों की बस्ती थी। वहाँ ज़्यादातर बाँस और शहतीरों की ही दूकानें थीं, जो सब की सब एक ही आग में जल गयी थीं। बाज़ार बांसां की वह आग अमृतसर की सबसे भयानक आग थी, जिससे कुछ देर के लिए तो सारे शहर के जल जाने का अंदेशा पैदा हो गया था। बाज़ार बांसां के आस-पास के कई मुहल्लों को तो उस आग ने अपनी लपेट में ले ही लिया था। ख़ैर, किसी तरह वह आग काबू में आ तो गयी, पर उसमें मुसलमानों के एक-एक घर के साथ हिन्दुओं के भी चार-चार, छः-छः घर जलकर राख हो गये। अब साढ़े सात साल में उनमें से कई इमारतें तो फिर से खड़ी हो गयी थीं, मगर जगह-जगह मलबे के ढेर अब भी मौजूद थे। नयी इमारतों के बीच-बीच में मलबे के ढेर अजीब ही वातावरण प्रस्तुत करते थे।

बाज़ार बांसां में उस दिन भी चहल-पहल नहीं थी, क्योंकि उस बाज़ार के ज़्यादातर बाशिन्दे तो अपने मकानों के साथ ही शहीद हो गये थे और जो बचकर चले गये थे, उनमें से शायद किसी में भी लौटकर आने की हिम्मत बाक़ी नहीं रही थी। सिर्फ़ एक दुबला-पतला बुड्ढा मुसलमान ही उस वीरान बाज़ार में आया और वहाँ की नयी और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूलभुलैया में पड़ गया। बाएँ हाथ को जाने वाली गली के पास पहुँचकर उसके क़दम अन्दर मुड़ने को हुए, मगर फिर वह हिचकिचाकर वहाँ बाहर ही खड़ा रह गया, जैसे उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह वही गली है या नहीं, जिसमें वह जाना चाहता है। गली में एक तरफ़ कुछ बच्चे कीड़ी-कीड़ा खेल रहे थे और कुछ अन्तर पर दो स्त्रियाँ ऊँची आवाज़ में चीखती हुई एक-दूसरी को गालियाँ दे रही थीं।

'सब कुछ बदल गया, मगर बोलियाँ नहीं बदलीं।' बुड्ढे मुसलमान ने धीमे स्वर में अपने से कहा और छड़ी का सहारा लिये खड़ा रहा। उसके घुटने पाजामे से बाहर निकल रहे थे और घुटनों के थोड़ा ऊपर ही उसकी शेरवानी में तीन-चार पैबन्द लगे थे। गली से एक बच्चा रोता हुआ बाहर को आ रहा था। उसने उसे पुचकारकर पुकारा, 'इधर आ, बेटे, आ इधर! देख, तुझे चिज्जी देंगे, आ!' और वह अपनी जेब में हाथ डालकर उसे देने के लिए कोई चीज़ ढूँढ़ने लगा। बच्चा

क्षण-भर के लिए चुप कर गया, लेकिन फिर उसने ओंठ बिसोर लिये और रोने लगा। एक सोलह-सत्रह बरस की लड़की गली के अन्दर से दौड़ती हुई आयी और बच्चे की बाँह पकड़कर उसे घसीटती हुई गली में ले चली। बच्चा रोने के साथ-साथ अपनी बाँह छुड़ाने के लिए मचलने लगा। लड़की ने उसे बाँहों में उठाकर अपने साथ चिपका लिया और उसका मुँह चूमती हुई बोली, 'चुप कर, मेरा वीर! रोयेगा तो तुझे वह मुसलमान पकड़कर ले जाएगा, मैं वारी जाऊँ, चुप कर!'

बुड्ढे मुसलमान ने बच्चे को देने के लिए जो पैसा निकाला था, वह वापस जेब में रख लिया। सिर से टोपी उतारकर उसने वहाँ थोड़ा खुजलाया और टोपी बगल में दबा ली। उसका गला खुश्क हो रहा था और घुटने ज़रा-ज़रा काँप रहे थे। उसने गली के बाहर की बन्द दूकान के तख़्ते का सहारा ले लिया और टोपी फिर से सिर पर लगा ली। गली के सामने, जहाँ पहले ऊँचे-ऊँचे शहतीर रखे रहते थे, वहाँ अब एक तिमंज़िला मकान खड़ा था। सामने बिजली के तार पर दो मोटी-मोटी चीलें बिल्कुल जड़ होकर बैठी थीं। बिजली के खम्बे के पास थोड़ी धूप थी। वह कई पल धूप में उड़ते हुए ज़र्रों को देखता रहा। फिर उसके मुँह से निकला, 'या मालिक!'

एक नवयुवक चाबियों का गुच्छा घुमाता हुआ गली की ओर आया और बुड्ढे को खड़े देखकर उसने रुककर पूछा, 'कहिए, मियाँ जी, यहाँ किस तरह खड़े हैं?'

बुड्ढे मुसलमान की छाती और बाँहों में हल्की-सी कँपकँपी हुई और उसने ओठों पर ज़बान फेरकर नवयुवक को ध्यान से देखते हुए पूछा, 'बेटे, तेरा नाम मनोरी नहीं है?'

नवयुवक ने चाबियों का गुच्छा हिलाना बन्द करके मुट्ठी में ले लिया और आश्चर्य के साथ पूछा, 'आपको मेरा नाम कैसे पता है?'

'साढ़े सात साल पहले तू बेटे, इतना-सा था', कहकर बुड्ढे ने मुसकराने की कोशिश की।

'आप आज पाकिस्तान से आये हैं?' मनोरी ने पूछा।

'हाँ, मगर पहले हम इसी गली में रहते थे', बुड्ढे ने कहा, 'मेरा लड़का चिराग़दीन तुम लोगों का दर्ज़ी था। तकसीम से छः महीने पहले हम लोगों ने यहाँ अपना नया मकान बनाया था।'

'ओ, गनी मियाँ!' मनोरी ने पहचानकर कहा।

'हाँ, बेटे, मैं तुम लोगों का गनी मियाँ हूँ! चिराग़ और उसके बीवी-बच्चे तो नहीं मिल सकते, मगर मैंने कहा कि एक बार मकान की सूरत ही देख लूँ!' और उसने टोपी उतारकर सिर पर हाथ फेरते हुए आँसुओं को बहने से रोक लिया।



'आप तो शायद काफ़ी पहले ही यहाँ से चले गये थे', मनोरी ने स्वर में संवेदना लाकर कहा।

'हाँ, बेटे, यह मेरी बदबख़्ती थी कि पहले अकेला निकलकर चला गया। यहाँ रहता, तो उनके साथ मैं भी···' और कहते-कहते उसे अहसास हो आया कि उसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। उसने बात मुँह में रोक ली, मगर आँख में आये हुए आँसुओं को बह जाने दिया।

'छोड़ो गनी मियाँ, अब बीती बातों को सोचने में क्या रखा है?' मनोरी ने गनी की बाँह पकड़कर कहा, 'चलो, तुम्हें तुम्हारा घर दिखा दूँ?'

गली में ख़बर इस रूप में फैली थी कि गली के बाहर एक मुसलमान खड़ा है, जो रामदासी के लड़के को उठाने जा रहा था···उसकी बहन उसे पकड़कर घसीट लायी, नहीं तो मुसलमान उसे ले गया होता। यह ख़बर पाते ही जो स्त्रियाँ गली में पीछे पीढ़े बिछाकर बैठी थीं, वे अपने-अपने पीढ़े उठाकर घरों के अन्दर चली गयीं। गली में खेलते हुए बच्चों को भी उन स्त्रियों ने पुकार-पुकारकर घरों में बुला लिया। मनोरी जब गनी को लेकर गली में आया, तो गली में एक फेरीवाला रह गया था या कुएँ के साथ उगे पीपल के नीचे रक्खा पहलवान बिखरकर सोया था। घरों की खिड़कियों में से और किवाड़ों के पीछे से अलबत्ता कई चेहरे झाँक रहे थे। गनी को गली में आते देखकर उनमें हल्की-हल्की चेहमेगोइयाँ शुरू हो गयीं। दाढ़ी के सब बाल सफ़ेद हो जाने के बावजूद लोगों ने चिरागदीन के बाप अब्दुल गनी को पहचान लिया था।

'वह था तुम्हारा मकान', मनोरी ने दूर से एक मलबे की ओर संकेत किया। गनी पल-भर के लिए ठिठककर फटी-फटी आँखों से उसकी ओर देखता रहा। चिराग़ और उसके बीवी-बच्चों की मौत को वह काफ़ी अर्सा पहले स्वीकार कर चुका था, मगर अपने नये मकान को इस रूप में देखकर उसे जो झुनझुनी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी ज़बान पहले से ज़्यादा खुश्क हो गयी और घुटने भी और ज़्यादा काँपने लगे।

'वह मलबा?' उसने अविश्वास के स्वर में पूछा।

मनोरी ने उसके चेहरे का बदला हुआ रंग देखा। उसकी बाँह को और सहारा देकर ठहरे हुए स्वर में उत्तर दिया, 'तुम्हारा मकान उन्हीं दिनों जल गया था।'

गनी छड़ी का सहारा लेता हुआ किसी तरह मलबे के पास पहुँच गया। मलबे में अब मिट्टी-ही-मिट्टी थी, जिसमें जहाँ-तहाँ टूटी और जली हुई ईंटें फँसी थीं। लोहे और लकड़ी का सामान उसमें से न जाने कब का निकाल लिया गया था। केवल जले हुए दरवाज़े का चौखट न जाने कैसे बचा रह गया था, जो मलबे में से बाहर को निकला हुआ था। पीछे की ओर दो जली अलमारियाँ थी, जिनकी कालिख पर अब सफ़ेदी की हल्की-हल्की तह उभर आयी थी। मलबे को पास से देखकर गनी

ने कहा, 'यह बाक़ी रह गया है, यह ?' और जैसे उसके घुटने जवाब दे गये और वह जले हुए चौखट को पकड़कर बैठ गया। क्षण-भर बाद उसका सिर भी चौखट से जा लगा और उसके मुँह से बिलखने की-सी आवाज़ निकली, 'हाय ! ओए चिरागदीना !'

जले हुए किवाड़ का चौखट साढ़े सात साल मलबे में से सिर निकाले खड़ा तो रहा था, मगर उसकी लकड़ी बुरी तरह भुरभुरा गयी थी। गनी के सिर के छूने से उसके कई रेशे झड़कर बिखर गये। कुछ रेशे गनी की टोपी और बालों पर आ गिरे। लकड़ी के रेशों के साथ एक केंचुआ भी नीचे गिरा, जो गनी के पैर से छः-आठ इंच दूर नाली के साथ लगी ईंटों की पटरी पर सरसराने लगा। वह अपने लिए सूराख ढूँढ़ता हुआ ज़रा-सा सिर उठाता, मगर दो-एक बार सिर पटककर और निराश होकर दूसरी ओर को मुड़ जाता।

खिड़कियों में से झाँकने वाले चेहरों की संख्या अब पहले से कहीं बढ़ गयी थी। उनमें चेहमेगोइयाँ चल रही थीं कि आज कुछ-न-कुछ ज़रूर होगा···चिराग़-दीन का बाप गनी आ गया है, इसलिए साढ़े सात साल पहले की सारी घटना आज खुल जायेगी। लोगों को लग रहा था, जैसे वह मलबा ही गनी को सारी कहानी सुना देगा कि शाम के वक़्त चिराग़ ऊपर के कमरे में खाना खा रहा था, जब रक्खे पहलवान ने उसे नीचे बुलाया कि वह एक मिनट आकर एक ज़रूरी बात सुन जाये···पहलवान उन दिनों गली का बादशाह था। हिन्दुओं पर ही उसका काफ़ी दबदबा था, चिराग़ तो ख़ैर मुसलमान था। चिराग़ हाथ का कौर बीच में ही छोड़कर नीचे उतर आया। उसकी बीवी जुबैदा और दोनों लड़कियाँ, किश्वर और सुलताना खिड़कियों में से नीचे झाँकने लगीं। चिराग ने ड्योढ़ी से बाहर क़दम रखा ही था कि पहलवान ने उसे कमीज़ के कालर से पकड़कर खींच लिया और गली में गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। चिराग़ उसका छुरेवाला हाथ पकड़कर चिल्लाया, 'न, रक्खे पहलवान, मुझे मत मार ! हाय ! कोई मुझे बचाओ। जुबैदा ! मुझे बचा !' और ऊपर जुबैदा-किश्वर और सुलताना हताश स्वर में चिल्लायीं। जुबैदा चीखती हुई नीचे ड्योढ़ी की तरफ़ भागी। रक्खे के एक शागिर्द ने चिराग़ की जद्दो-जेहद करती हुई बाँहें पकड़ लीं और रक्खा उसकी जाँघों को घुटने से दबाये हुए बोला, 'चीखता क्यों है, भैण के···तुझे पाकिस्तान दे रहा हूँ, ले !' और जुबैदा के नीचे पहुँचने से पहले ही चिराग़ को पाकिस्तान दे दिया।

आसपास के घरों की खिड़कियाँ बन्द हो गयीं। जो लोग दृश्य के साक्षी थे, उन्होंने दरवाज़े बन्द करके अपने को इस घटना के उत्तरदायित्व से मुक्त कर लिया। बन्द किवाड़ों में भी उन्हें देर तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना के चीखने की आवाज़ें सुनाई देती रहीं। रक्खे पहलवान और उसके साथियों ने उन्हें भी उसी रात पाकिस्तान देकर विदा कर दिया, मगर दूसरे तवील रास्ते से। उनकी



लाशें चिराग़ के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पायी गयीं।

दो दिन तक चिराग़ के घर की छानबीन होती रही थी। जब उसका सारा सामान लूटा जा चुका, तो न जाने किसने उस घर को आग लगा दी। रक्खे पहलवान ने क़सम खाई थी कि वह आग लगाने वाले को ज़िंदा ज़मीन में गाड़ देगा, क्योंकि उसने उस मकान पर नज़र रखकर ही चिराग़ को मारने का निश्चय किया था। उसने उस मकान को शुद्ध करने के लिए हवन-सामग्री भी ख़रीद रखी थी। मगर आग लगाने वाले का पता ही नहीं चल सका, उसे ज़िंदा गाड़ने की नौबत तो बाद में आती। अब साढ़े सात साल से रक्खा पहलवान उस मलबे को अपनी जागीर समझता आ रहा था, जहाँ न वह किसी को गाय-भैंस बाँधने देता था और न खोंचा लगाने देता था। उस मलबे से बिना उसकी अनुमति के कोई ईंट भी नहीं उठा सकता था।

लोग आशा कर रहे थे कि यह सारी कहानी ज़रूर किसी-न-किसी तरह गनी के कानों तक पहुँच जायेगी···जैसे मलबे को देखकर उसे अपने-आप ही सारी घटना का पता चल जायेगा। और गनी मलबे की मिट्टी नाखूनों से खोद-खोदकर अपने ऊपर डाल रहा था और दरवाज़े के चौखट को बाँह में लिये रो रहा था, 'बोल, चिरागदीना, बोल ! तू कहाँ चला गया, ओए ? ओ किश्वर ! ओ सुलताना ! हाय मेरे बच्चे ओए ऽऽ ! गनी को कहाँ छोड़ दिया, ओए ऽऽऽ !'

और भुरभुरे किवाड़ से लकड़ी के रेशे झड़ते जा रहे थे।

पीपल के नीचे सोये हुए रक्खे पहलवान को जाने किसी ने जगा दिया, या वह ख़ुद ही जाग गया। यह जानकर कि पाकिस्तान से अब्दुलगनी आया है और अपने मकान के मलबे पर बैठा है, उसके गले में थोड़ा झाग उठ आया, जिससे उसे खाँसी हो आयी और उसने कुएँ के फ़र्श पर थूक दिया। मलबे की ओर देखकर उसकी छाती से धौंकनी का-सा स्वर निकला और उसका निचला ओंठ थोड़ा बाहर को फैल गया।

'गनी अपने मलबे पर बैठा है,' उसके शागिर्द लच्छे पहलवान ने उसके पास आकर बैठते हुए कहा।

'मलबा उसका कैसे है ? मलबा हमारा है !' पहलवान ने झाग के कारण घहराती हुई आवाज़ में कहा।

'मगर वह वहाँ पर बैठा है,' लच्छे ने आँखों में रहस्यमय संकेत लाकर कहा।

'बैठा है, बैठा रहे, तू चिलम ला !' उसकी टाँगें थोड़ी फैल गयीं और उसने अपनी नंगी जाँघों पर हाथ फेरा।

'मनोरी ने अगर उसे कुछ बताया-बताया, तो···' लच्छे ने चिलम भरने के लिए उठते हुए उसी रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा।

'मनोरी की शामत आयी है ?'

लच्छा चला गया।

कुएँ पर पीपल की कई पुरानी पत्तियाँ बिखरी थी। रक्खा उन पत्तियों को उठा-उठाकर हाथों में मसलता रहा। जब लच्छे ने चिलम के नीचे कपड़ा लगाकर उसके हाथ में दिया, तो उसने कश खींचते हुए पूछा, 'और तो किसी से गनी की बात नहीं हुई ?'

'नहीं।'

'ले, और उसने खाँसते हुए चिलम लच्छे के हाथ में दे दी। लच्छे ने देखा कि मनोरी मलबे की तरफ़ से गनी की बाँह पकड़े हुए आ रहा है। वह उकड़ूँ होकर चिलम के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा। उसकी आँखें आधा क्षण रक्खे के चेहरे पर टिकतीं और आधा क्षण गनी की ओर लगी रहतीं।

मनोरी गनी की बाँह पकड़े हुए उससे एक क़दम आगे चल रहा था, जैसे उसकी कोशिश हो कि गनी कुएँ के पास से बिना रक्खे पहलवान को देखे ही निकल जाये। मगर रक्खा जिस तरह बिखरकर बैठा था, उससे गनी ने उसे दूर से ही देख लिया। कुएँ के पास पहुँचते न पहुँचते उसकी दोनों बाँहें फैल गयीं और उसने कहा, 'रक्खे पहलवान !'

रक्खे ने गरदन उठाकर और आँखें ज़रा छोटी करके उसे देखा। उसके गले में अस्पष्ट-सी घहराहट हुई, पर वह बोला कुछ नहीं।

'रक्खे पहलवान, मुझे पहचाना नहीं ?' गनी ने बाँहें नीची करके कहा, 'मैं गनी हूँ, अब्दुल गनी, चिराग़दीन का बाप !'

पहलवान ने संदेहपूर्ण दृष्टि से उसका ऊपर से नीचे तक जायज़ा लिया। अब्दुल गनी की आँखों में उसे देखकर चमक आ गयी थी। सफ़ेद दाढ़ी के नीचे उसके चेहरे की झुर्रियाँ ज़रा फैल गयी थीं। रक्खे का निचला ओंठ फड़का, फिर उसकी छाती से भारी-सा स्वर निकला, 'सुना, गनिया !'

गनी की बाँहें फिर फैलने को हुईं, परन्तु पहलवान पर कोई प्रतिक्रिया न देखकर उसी तरह रह गयीं। वह पीपल के तने का सहारा लेकर कुएँ की सिल पर बैठ गया।

ऊपर खिड़कियों में चेहमेगोइयाँ तेज़ हो गयीं कि अब दोनों आमने-सामने आ गये हैं, तो बात ज़रूर खुलेगी···फिर हो सकता है, दोनों में गाली-गलौज भी हो··· अब रक्खा गनी को कुछ नहीं कह सकता, अब वो दिन नहीं रहे···बड़ा मलबे का मालिक बनता था !···असल में मलबा न इसका है, न गनी का। मलबा तो सरकार की मलकियत है···मरदूद किसी को वहाँ गाय का खूँटा तक नहीं लगाने देता।···मनोरी भी डरपोक है। इसने गनी को बताया क्यों नहीं कि रक्खे ने ही चिराग़ और उसके बीवी-बच्चों को मारा है···रक्खा आदमी नहीं, साँड है। दिनभर साँड की तरह गली में घूमता है···गनी बेचारा कितना दुबला हो गया है ?



दाढ़ी के सारे बाल सफ़ेद हो गये हैं !···

गनी ने कुएँ की सिल पर बैठकर कहा, 'देख, रक्खे पहलवान, क्या से क्या हो गया है ? भरा-पूरा घर छोड़कर गया था और आज यहाँ मिट्टी देखने आया हूँ। बसे हुए घर की यही निशानी रह गयी है। तू सच पूछे रक्खे, तो मेरा यह मिट्टी भी छोड़कर जाने को जी नहीं करता !' और उसकी आँखें छलछला आयीं।

पहलवान ने अपनी फैली हुई टाँगें समेट लीं और अँगोछा कुएँ की मुंडेर से उठाकर कन्धे पर डाल लिया। लच्छे ने चिलम उसकी तरफ़ बढ़ा दी और वह कश खींचने लगा।

'तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह ?' गनी आँसू रोकता हुआ आग्रह के साथ बोला, 'तुम लोग उसके पास थे, सबमें भाई-भाई की-सी मुहब्बत थी, अगर वह चाहता तो वह तुममें से किसी के घर में नहीं छिप सकता था ? उसे इतनी भी समझ नहीं आयी ?'

'ऐसा ही है,' रक्खे को स्वयं लगा कि उसकी आवाज़ में कुछ अस्वाभाविक-सी गूँज है। उसके ओंठ गाढ़े लार से चिपक गये थे। उसकी मूँछों के नीचे से पसीना उसके ओठों पर आ रहा था। उसके माथे पर किसी चीज़ का दबाव पड़ रहा था और उसकी रीढ़ की हड्डी सहारा चाह रही थी।

'पाकिस्तान का क्या हाल है ?' उसने वैसे ही स्वर में पूछा। उसके गले की नसों में तनाव आ गया था। उसने अँगोछे से बगलों का पसीना पोंछा और गले का झाग मुँह में खींच-खींचकर गली में थूक दिया।

'मैं क्या हाल बताऊँ, रक्खे,' गनी दोनों हाथों से छड़ी पर ज़ोर देकर झुकता हुआ बोला, 'मेरा हाल पूछे, तो वह मेरा खुदा ही जानता है। मेरा चिराग़ साथ होता, तो और बात थी···रक्खे, मैंने उसे कितना समझाया था कि मेरे साथ चला चल। मगर वह अड़ा रहा कि नया मकान छोड़कर कैसे जाऊँ, यहाँ अपनी गली है, कोई ख़तरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में ख़तरा न सही, बाहर से तो ख़तरा आ सकता है ? मकान की रखवाली के लिए चारों जनों ने जान दे दी !···रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब आनी आयी, तो रक्खे के रोके भी न रुक सकी।'

रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की, क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी दर्द कर रही थी। उसे अपनी कमर और जाँघों के जोड़ पर सख़्त दबाव महसूस हो रहा था। पेट की अंतड़ियों के पास जैसे कोई चीज़ उसकी साँस को जकड़ रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने से भीग गया था और उसके पैरों के तलुवों में चुनचुनाहट हो रही थी। बीच-बीच में नीली फुलझड़ियाँ-सी ऊपर से उतरतीं और उसकी आँखों के सामने तैरती हुई निकल जातीं। उसे अपनी ज़बान और ओंठों के बीच का अंतर

कुछ ज़्यादा महसूस हो रहा था। उसने अँगोछे से ओंठों के कोनों को साफ़ किया और उसके मुँह से निकला, 'हे प्रभु सच्चिआ, तू ही है, तू ही है, तू ही है !'

गनी ने लक्षित किया कि पहलवान के ओंठ सूख रहे हैं और उसकी आँखों के इर्द-गिर्द दायरे गहरे हो आये हैं, तो वह उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोला, 'जी हल्का न कर, रक्खिआ ! जो होनी थी, सो हो गयी। उसे कोई लौटा थोड़े ही सकता है ? खुदा नेक की नेकी रखे और बद की बदी माफ़ करे ! मेरे लिए चिराग नहीं, तो तुम लोग तो हो। मुझे आकर इतनी ही तसल्ली हुई कि उस ज़माने की कोई तो यादगार है। मैंने तुमको देख लिया, तो चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम लोगों को सेहतमन्द रखे ! जीते रहो और ख़ुशियाँ देखो !' और गनी छड़ी पर दबाव देकर उठ खड़ा हुआ। चलते हुए उसने फिर कहा, 'रक्खे पहलवान, याद रखना !'

रक्खे के गले में स्वीकृति की मद्धम-सी आवाज़ निकली। अँगोछा बीच में लिये हुए उसके दोनों हाथ जुड़ गये। गनी गली के वातावरण को हसरत-भरी नज़र से देखता हुआ धीरे-धीरे गली से बाहर चला गया।

ऊपर खिड़कियों में थोड़ी देर चेहमेगोइयाँ चलती रहीं कि मनोरी ने गली के बाहर निकलकर ज़रूर गनी को सब कुछ बता दिया होगा···गनी के सामने रक्खे का तालू तिस तरह खुश्क हो गया था ?···रक्खा अब किस मुँह से लोगों को मलबे पर गाय बाँधने से रोकेगा ?···बेचारी जुबैदा ! बेचारी कितनी अच्छी थी। कभी किसी से मन्दा बोल नहीं बोली···रक्खे मरदूद का घर, न घाट, इसे किस माँ-बहन का लिहाज़ था ?

और थोड़ी ही देर में स्त्रियाँ घरों से गली में उतर आयीं। बच्चे गली में गुल्ली-डण्डा खेलने लगे और दो बारह-तेरह बरस की लड़कियाँ किसी बात पर एक-दूसरी से गुत्थम-गुत्था हो गयीं।

रक्खा गहरी शाम तक कुएँ पर बैठा खँखारता और चिलम फूँकता रहा। कई लोगों ने यहाँ से गुज़रते हुए उससे पूछा, 'रक्खे शाह, सुना है, आज गनी पाकिस्तान से आया था ?'

'हाँ, आया था', रक्खे ने हर बार एक ही उत्तर दिया।

'फिर ?'

'फिर कुछ नहीं, चला गया।'

रात होने पर रक्खा रोज़ की तरह गली के बाहर बाईं ओर की दुकान के तख़्ते पर आ बैठा। रोज़ अक्सर वह रास्ते से गुज़रने वाले परिचित लोगों को आवाज़ देकर बुला लेता था और उन्हें सट्टे के गुर और सेहत के नुस्खे बताया करता था। मगर उस दिन वह लच्छे को अपनी वैष्णो देवी की उस यात्रा का विवरण सुनाता रहा, जो उसने पन्द्रह साल पहले की थी। लच्छे को विदा करके



वह गली में आया, तो मलबे के पास लोकू पण्डित की भैंस को खड़ा देखकर वह रोज़ की आदत के मुताबिक़ उसे धक्के दे-देकर हटाने लगा—तत्-तत्-तत्··· तत्-तत्···

और भैंस को हटाकर वह सुस्ताने के लिए मलबे के चौखट पर बैठ गया। गली उस समय बिल्कुल सुनसान थी। कमेटी की कोई बत्ती न होने से वहाँ शाम से ही अँधेरा हो जाता था। मलबे के नीचे नाली का पानी हल्की आवाज़ करता हुआ बह रहा था। रात की ख़ामोशी के साथ मिली हुई कई तरह की हल्की-हल्की आवाज़ें मलबे की मिट्टी में से निकल रही थीं···च्यु च्यु च्यु···चिक्-चिक्-चिक् ···चिर्र्र्र्-इर्र्र्र्-री री री री-चिर्र्र्र्···एक भटका हुआ कौवा न जाने कहाँ से उड़कर लकड़ी के चौखट पर आ बैठा। उससे लकड़ी के रेशे इधर-उधर छितरा गये। कौवे के वहाँ बैठते न बैठते मलबे के एक कोने में लेटा हुआ कुत्ता गुर्राकर उठा और ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा, वऊ-अऊ-अऊ वऊ ! कौवा कुछ देर सहमा-सा चौखट पर बैठा रहा, फिर वह पंख फड़फड़ाता हुआ उड़कर कुएँ के पीपल पर चला गया। कौवे के उड़ जाने पर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवान की ओर मुँह करके भौंकने लगा। पहलवान उसे हटाने के लिए भारी आवाज़ में बोला—दुर् दुर् दुर्···दुरे !

मगर कुत्ता और पास आकर भौंकने लगा···वउ-अउ-वउ-वउ-वउ-वउ···

—हट-हट, दुर्र्र्र्-दुर्र्र्र्र् दुरे !···

—वउ-अउ-अउ-अउ-अउ-अउ !···

पहलवान ने एक ढेला उठाकर कुत्ते की ओर फेंका। कुत्ता थोड़ा पीछे हट गया, पर इसका भौंकना बन्द नहीं हुआ। पहलवान मुँह ही मुँह कुत्ते को माँ की गाली देकर वहाँ से उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे जाकर कुएँ की सिल पर लेट गया। पहलवान के वहाँ से हटने पर कुत्ता गली में उतर आया और कुएँ की ओर मुँह करके भौंकने लगा। काफ़ी देर भौंककर जब गली में उसे कोई प्राणी चलता-फिरता दिखाई नहीं दिया, तो वह एक बार कान झटककर मलबे पर लौट आया और वहाँ कोने में बैठकर गुर्राने लगा।